International Journal of Arts & Education Research

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शैक्षिक विचारों का अनुशीलन

डा०सुरक्षा बंसल
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षा विभाग
गाँधी इन्स्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल
एण्ड टैक्नीकल स्टडीज
मेरठ।

विक्की
शोधार्थी
शिक्षा विभाग
सी०एम०जे० विश्वविद्यालय
राय भोई, जोरबाट
मेघालय।

सारांश–
डा० राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा के माध्यम से ही विश्व नागरिकता और विश्व संस्कृति का अर्न्तबोध पैदा किया जा सकता है। डा० राधाकृष्णन बौद्धिक दक्षता और भौतिक क्षमता को आध्यात्मिकता की निरक्षरता होने पर बहुत घातक मानते हैं। अतः यह शिक्षा के आध्यात्मिक पहलू पर विशेष बल देना चाहते हैं। उनके अनुसार बालक की आत्मचेतना, वैयक्तिकता, अपनी संस्कृति में विश्वास और कर्तव्य पालन एवं नागरिकता के गुण में वृद्धि करना ही शिक्षा का प्रारम्भिक एवं प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। शिक्षा में प्रजातन्त्र के विविध आदर्शों का समावेश करके उसे इस योग्य बना देना आवश्यक है कि शिक्षार्थी बन्धुत्व, सत्य, एकता, न्याय, प्रेम और स्वतन्त्रता, हिंसा और युद्ध का दमन तथा आध्यात्मवाद के प्रति जिज्ञासा और त्याग में आनन्द की अनुभूति पा सके।

डा० राधाकृष्णन भारतीय संस्कृति, श्रेष्ठ धार्मिक विचारों, विश्व-बन्धुत्व की भावना और समस्त मानवता के कल्याण के प्रति अगाध प्रेम रखते थे यह बात उनके शैक्षिक विचारों में भी देखने को मिलती है। **डा० राधाकृष्णन के शब्दों में शिक्षा का अर्थ** 'मनुष्य का सन्तुलित विकास करने की शक्ति है। उसका कार्य केवल बुद्धि को विकसित करना ही नहीं, बल्कि मानव हृदय को ज्ञान की महत्ता को समझाना है जिससे उसका हृदय सौन्दर्य की अनुभूति कर सके। दर्शन-शास्त्र के द्वारा सत् की प्रकृति को समझा जा सकता है। वह जीवन के वास्तविक ध्येय को जानने में सहायक है और हमें यह बताता है कि ब्रह्माण्ड का क्या महत्व है। जीवन का लक्ष्य दुनियाबी आनन्द उठाना नहीं बल्कि आत्मा को शिक्षा देना है। प्रत्यक्षतः यही मानव के जीवन का ध्येय होना चाहिए। मनुष्य का जीवन आन्तरिक सत्य को जानने के लिए है। शिक्षा का वास्तविक ध्येय मनुष्य को आन्तरिक सत् जानने में सहायता देना है।'

डा० राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य–
डा० राधाकृष्णन ने शिक्षा के उद्देश्यों का विस्तृत उल्लेख अपनी पुस्तक **'सर्च फॉर ट्रूथ'** में और विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की आख्या 1949 में किया है। भौतिक सफलता शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य नहीं है। शिक्षा का ध्येय हमें यह जानने में सहायता देना है कि विश्व में हमारे जीवन का स्तर क्या है। डा० राधाकृष्णन के अनुसार मनुष्य का समस्त जीवन स्वयं सिद्धि की शिक्षा के लिए है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य का आन्तरिक विकास सम्भव है। उसका प्रभाव चिरस्थायी होता है।

डा० राधाकृष्णन ने शिक्षा की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य यह है कि मनुष्य का चरित्र तालबद्ध होना चाहिए और उसकी आत्मा सृजनात्मक होनी चाहिए।' मनुष्य में सृजनात्मक प्रतिभा के विकास के लिए उन्होंने लिखा है, 'हमारी शिक्षा को मानव आत्मा को खण्डित नहीं करना चाहिए। शिक्षा के नाम पर हम मनुष्य की सृजनशीलता को समाप्त कर देते हैं। महान शिक्षक को अपने शिष्य को यह बताना चाहिए कि अब तक उसने जीवन में सबसे उत्तम क्या किया और क्या कहा गया है। परन्तु शिष्य को सोचना और अपने विषय में क्या निश्चय करना चाहिए यह उसी पर छोड़ देना चाहिए।'

उनका विचार है कि, 'शिक्षा की समुचित पद्धति को मनुष्य के सन्तुलित विकास पर महत्व देना चाहिए और ज्ञान की महत्ता को समझना चाहिए। इसे केवल बुद्धि को शिक्षित नहीं करना चाहिए बल्कि मानव हृदय को सुन्दरता से परिपूरित कर देना चाहिए। ज्ञान साहित्य, दर्शन और धर्म के अध्ययन से अर्जित किया जा सकता है। वह ब्रह्माण्ड के उच्चतम् नियमों की व्याख्या करता है। यदि हमारा कोई सामान्य दर्शन अथवा जीवन का दृष्टिकोण नहीं है तो हम व्याकुल हो उठेंगे और हम लालच, भीरूता, अद्विग्नता से ग्रस्त रहेंगे। मानसिक गन्दगी, भौतिक गन्दगी से अधिक गम्भीर और भयंकर है।'

डा० राधाकृष्णन उस शिक्षा के कड़े आलोचक हैं जो मनुष्य को गुलाम बनाती है और उसे अर्द्धशिक्षित करती है। आधुनिक शिक्षा ने केवल परतन्त्र मस्तिष्क को जन्म दिया है। डा० राधाकृष्णन ऐसे अर्द्धनिर्मित और अर्द्धशिक्षित लोगों के प्रति दया प्रकट करते हैं। उन्होंने

टैगोर के शब्दों का उल्लेख करते हुए कहा, 'आजकल के शिक्षालय यंत्रालय के समान हैं, जिनका उद्देश्य एक स्वरूप वाला परिणाम तैयार करना है।'

एक स्थान पर उन्होंने शिक्षा की व्याख्या करते हुए कहा है कि वह केवल दूसरों की भावनाओं की पुरूवित करने में सामर्थ्य नहीं हैं और उन्हीं शब्दों को दोबारा कहने की शक्ति भी नहीं है जो दूसरों ने तुम्हें दिए हैं, परन्तु यह ठीक दृष्टिकोण का विकास है- मानवता का दृष्टिकोण और विनय का दृष्टिकोण। एक सन्तुलित व्यक्तित्व और स्वतन्त्र आत्मा उस शिक्षा का परिणाम है जिसका आदर्श मनुष्य सम्पूर्ण मानव अथवा अखण्ड मानव बनाना है। दुर्भाग्यवश हमारी शिक्षा ने इस ध्येय की पूर्ति नहीं की है और शिक्षा का वास्तविक ध्येय **'मनुष्य की मुक्ति'** की पूर्ति नहीं नहीं हुई है।

डा० राधाकृष्णन के अनुसार पाठ्यक्रम-

डा० राधाकृष्णन ने हमारे शिक्षालयों के लिए जिस पाठ्यक्रम का प्रस्ताव किया है वह वर्तमान पद्धति से भिन्न नहीं है। उन्होंने केवल उस विषय के ध्येय को जो आजकल पढ़ाया जाता है स्पष्ट किया है। नये युग में विज्ञान की शिक्षा शिल्पकला, विज्ञान और सामाजिक सुधार के लिए आवश्यक है। वास्तव में, 'यह विश्वास करना बिल्कुल भूल है कि विज्ञान आत्मा से विपरीत अथवा उसके प्रति उदासीन है। विज्ञान की महान प्रगति वस्तु की प्रधानता नहीं बताती बल्कि मानव मस्तिष्क की वस्तु जगत पर प्रधानता बताती है। विज्ञान ब्रह्माण्ड का रहस्योद्घाटन करता है। आध्यात्मिक जीवन की समृद्धि के विषय में बताता है।'

डा० राधाकृष्णन ने वर्तमान शिक्षा की दो मूलाधार कमियों की ओर लक्ष्य किया है-

1- साहित्यिक रूप पर आवश्यकता से अधिक महत्व।

2- राष्ट्रीय परम्परा को स्वीकार न करने की चेष्टा।

किसी राष्ट्र की महानता का पता इससे नहीं लगाया जा सकता कि वहाँ कितने लोगों को अक्षर ज्ञान है बल्कि इसका अनुमान उस राष्ट्र के विज्ञान ओर विद्या की समृद्धि में योगदान से लगाया जा सकता है। युवकों को इस प्रकार तैयार करने का उत्तरदायित्व शिक्षा की विभिन्न सीढ़ियों प्राथमिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा पर निर्भर है इसलिए शिक्षा की ये सीढ़ियाँ पक्की और यथाक्रम होनी चाहिए और उनका ध्येय स्पष्ट होना चाहिए जिससे वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति सरलता से की जा सके। कॉलिजों का कार्य केवल उस पाठ्यक्रम की समाप्ति है जिसका शिक्षण विद्यार्थियों को पहले ही मिल चुका है।

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में डा० राधाकृष्णन के विचार **'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग-1949'** की आख्या में मिलते हैं। उसमें पाठ्यक्रम की विविध समस्याओं पर विचार किया गया है। उनकी संस्तुति है कि शिक्षा के पाठ्यक्रम में दर्शन, साहित्य, विज्ञान, नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, वेदान्त अथवा आध्यात्म विद्या, भूगोल, इतिहास, कृषि-विज्ञान, अर्थशास्त्र, मानव विज्ञान और नागरिकशास्त्र छात्रों के लिए निर्धारित होने चाहिए। छात्राओं के लिए पाकशास्त्र, हस्त कौशल, गृहविज्ञान, नीतिशास्त्र, वेदान्त और ललित कलाओं के विषय पाठ्यक्रम में समाविष्ट किए जाने आवश्यक है। वे लड़के और लड़कियों के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम का निर्धारण आवश्यक मानते थे।

जीवन के वास्तविक ध्येय की प्राप्ति के लिए दर्शनशास्त्र की आवश्यकता है। अंकगणित के द्वारा अनुसन्धान के कार्य में भी सभी स्तर पर सहायता मिलती है और सामाजिक विज्ञान हमें मानव विकास के लक्ष्य की ओर समीप से समीपतर ले जाता है। कृषि सम्बन्धी कला उत्पादन को बढ़ाती है। अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र के द्वारा नियम बनाने में सहायता मिलती है फिर भी सन्तुलित जीवनयापन के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य कुछ सिद्धान्तों में गति प्राप्त कर ले। सामाजिक विज्ञान अथवा प्राकृतिक विज्ञान हमें ज्ञान देता है, निर्णय सशक्त नहीं, प्रभाव देता है परन्तु अनुमोदन नहीं। यहाँ पर उत्तम पुस्तकें और साहित्य पढ़ने से सहायता मिल सकती है। साहित्य आध्यात्मिक दृष्टि और मानव के बीच में सेतु है।

डा० राधाकृष्णन ने बुनियादी शिक्षा की प्रशंसा की है जो पहले प्रयोग करके शिक्षा ग्रहण करने पर जोर देती है तथा केवल पुस्तकीय ज्ञान को कम करने का प्रयास करती है। दस्तकारी विद्या, कृषि विज्ञान, कताई-बुनाई, बागवानी, बढ़ईगिरी, चमड़े का काम और पाककला द्वारा शिक्षा दी जाती है। यह विद्यार्थी का दैनिक जीवन से सम्पर्क कराती है। यह शारीरिक शिक्षा का महत्व समझाती है। शरीर मानव आत्मा की अभिव्यक्ति का साधन है, इसलिए भौतिक शिक्षा ठीक ढंग से होनी चाहिए। वह सन्तुलित पाठ्यक्रम की अपेक्षा करते हैं जो सामान्य भी हो और व्यवसाय सम्बन्धी भी। इस पाठ्यक्रम को केवल पुस्तक सम्बन्धी होने के स्थान पर सन्तुलित करना चाहिए।

डा० राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा का माध्यम-

शिक्षा के माध्यम के विषय में सन् 1910 में लिखते हुए डा० राधाकृष्णन की टैगोर से सहमति थी। टैगोर ने विदेशी शिक्षा की आलोचना करते हुए लिखा था कि यह केवल शिक्षालयों की वस्तु है और संकत सूचिका के समान टंगी है। वह भारतीय जीवन का भाग नहीं है। लगभग सभी समकालीन भारतीय दार्शनिकों ने मातृभाषा में ही शिक्षा को सही माना है। आधुनिक काल में श्री अरविन्द, टैगोर, गाँधी तथा डा० राधाकृष्णन ने अंग्रेजी माध्यम को ही सबसे बड़ी हानि माना कि उससे समाज में शिक्षित लोगों के एक ऐसे वर्ग का

निर्माण होता है जो अन्य प्रकार से ही नहीं बल्कि भाषा की दृष्टि से भी सामान्य व्यक्ति से अलग हो जाता है। ये लोग भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि नहीं हैं क्योंकि इन्होंने अंग्रेजी और इसके माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति को ही पढ़ा है। बालक के लिए मातृभाषा द्वारा शिक्षण सबसे स्वाभाविक शिक्षण है। डा० राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा होना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि कभी भी यह नहीं सोचा जा सकता कि अंग्रेजी भाषा भारतीय जनभाषा बन सकती है। इसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा कि भारतीय अंग्रेजी भाषा में महान साहित्य की रचना नहीं कर सकते हैं और उसमें कभी मौलिकता नहीं आ सकती है। आधुनिक काल में मनोवैज्ञानिक खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि द्विभाषावाद बालक के विकास में बाधक होता है क्योंकि जब बालक को आरम्भ से ही दो भाषायें सिखायी जाती हैं तो वह दोनों में से किसी एक में भी योग्य नहीं बन पाता और उसकी मौलिकता समाप्त हो जाती है। डा० राधाकृष्णन ने लिखा है कि, 'वर्तमान काल में शिक्षित वर्ग की अल्पज्ञता और उनमें परिपक्वता होने की असीम योग्यता होते हुए भी मौलिकता का अभाव केवल दो भाषाओं में चिन्तन के कारण हैं।'

प्रादेशिक भाषा के अतिरिक्त डा० राधाकृष्णन ने संस्कृत भाषा पर भी जोर दिया क्यों कि भारतीय संस्कृति का भण्डार संस्कृत भाषा में ही मिलता है। यह भारत की धर्मग्रन्थों की भाषा है और राष्ट्र की आत्मा है जिससे मानवीय मूल्यों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन मिलता है। डा० राधाकृष्णन ने भारतीय साहित्य का निर्माण स्वयं संस्कृत भाषा में किया और अपने ग्रन्थों का मुख्य विषय भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को बनाया।

डा० राधाकृष्णन का विचार था कि एक अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिन्दी परिमार्जन एवं परिवर्धन करते हुए उसको जनमानस की भाषा बनाया जायं। अतः उन्होंने शिक्षा तथा साहित्य के निर्माण में हिन्दी को प्रमुखता प्रदान की। जहाँ जनमानस की भाषा हिन्दी लोगों में एकता का भाव प्रदर्शित करती है वहीं राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में अर्न्तराष्ट्रीय पटल पर पाश्चात्य भाषाओं के समान अपना अस्तित्व बनाये हुए है।

डा० राधाकृष्णन ने त्रिभाषा सूत्र का अनुसरण करते हुए एक मातृभाषा, एक राष्ट्रभाषा तथा एक पाश्चात्य भाषा का बालक की शिक्षा में अनिवार्य संगठन बताया है। उनके अनुसार, 'भाषाओं की शिक्षा का एकमात्र ध्येय बोध और व्यवहार का सेतु निर्माण होना चाहिए। हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की स्वाभाविक प्रगति होनी चाहिए, उसे कहीं भी बलपूर्वक लादा नहीं जाना चाहिए।'

डा० राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षण पद्धतियाँ–

शिक्षण के सम्बन्ध में निरीक्षण, प्रयोग और निकट सम्पर्क की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं। वे चाहते थे कि बालक प्रकृति और समाज के समीप्य स्थापित कर उसका अध्ययन करे। शिक्षण में वे आत्म-उदाहरण, अनुसरण, निर्देशन, अभ्यास और चिन्तन का महत्व स्वीकार करते हैं और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रणालियों को अपनाने का समर्थन करते हैं, उदाहरणार्थ, उद्योग में अनुसरण, नैतिक शिक्षा में शिक्षक द्वारा आत्म उदाहरण, आदर्श प्राप्ति के सतत् अभ्यास का वे परामर्श देते हैं। अर्न्तज्ञान के महत्व को भी अनेक विषयों में स्वीकार करते हैं।

डा० राधाकृष्णन शिक्षा में शिक्षण विधि को महत्व देना ठीक समझते थे। उनके अनुसार निरीक्षण, प्रयोगों और प्रकृति एवं समाज में सम्बन्ध स्थापित करना शिक्षण विधि का प्रमुख भाग होना आवश्यक है। नैतिक मूल्यों का शिक्षण सैद्धान्तिक न होकर वास्तविक और जीवित उदाहरणों के माध्यम से दिए जाने वाला होना चाहिए। ऐसे विषय जिनमें शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है अनुकरण विधि के द्वारा सिखाए जाने चाहिए। यदि व्यक्ति को योग और भक्ति का नियमित अभ्यास दिया जायं तो वह जीवन लक्ष्य तक पहुँच सकता है। विभिन्न प्रकार के विषयों में अर्न्तज्ञान का महत्व अनुभवों के लिए विशेष रूप से है। अतः उसका महत्व स्वीकार करते हुए उसके देने की व्यवस्था भी की जायं तो उत्तम होगा।

डा० राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा में शिक्षक का स्थान–

जब बालक इस पृथ्वी पर जन्म लेता है तो उस समय उसका मस्तिष्क कोरे कागज की भाँति होता है। माँ के प्रथम स्पर्श से ही उसकी शिक्षा प्रारम्भ होकर अनुभव एवं बुद्धि के माध्यम से तार्किक बनाकर उसे जीवनपथ पर चलने के लिए विशिष्टता प्रदान करती है। आजन्म चलने वाली प्रक्रिया के रूप में शिक्षा बालक का सर्वांगींण विकास कर बालक की अर्न्तनिहित शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करती है।

यदि माँ बालक की प्रथम शिक्षिका है तो शिक्षक वह माली है जिसके निर्देशन, निरीक्षण एवं दिग्दर्शन में बालक रूपी पुष्प पल्लवित एवं पुष्पित हो संसार में छटा बिखेरता है। डा० राधाकृष्णन के विचार में शिक्षा का कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार शिक्षकों का कार्य प्राचीन परम्पराओं को आगे की ओर अग्रसर करना है। उनका कथन था कि हम किस प्रकार के शिक्षक अपने युवकों को दे सकते हैं। जब तक शिक्षक योग्य न हो और अपनी अवस्था से सन्तुष्ट न हों, तब तक इस अथवा उस ध्येय के विषय में बात करना आकाश में कुलावे बनाने के समान है। विशाल भवन और साधन किसी महान शिक्षक को स्थानापन्न नहीं कर सकते हैं।

जिस राष्ट्र ने शिक्षक के महत्व को नहीं समझा उसके लिए भविष्य में कोई आशा नहीं है। 'हमारे युवकों के मस्तिष्क और हृदय के निर्माण में शिक्षकों का विशिष्ट स्थान है। यह इतना स्पष्ट है कि इसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है परन्तु बार-बार कहने पर भी हम वर्तमान सन्दर्भ में शिक्षक के मूल्य को नहीं समझे हैं।'

शिक्षा देना साधारण कार्य नहीं है। एक शिक्षक वह है जो स्वयं समर्पित है वह मानव के भविष्य के प्रति विश्वास के लिए समर्पित है, मानव का भविष्य अपने देश और विश्व के लिए समर्पित है। केवल उत्सर्ग की भावना वाले व्यक्ति इस देश को महानतम् बना सकते हैं। भारत में उच्च शिक्षकों की परम्परा ऋषियों में पायी जाती है। अपनी बौद्धिक और भावनात्मक परिपक्वता के कारण वह अपने शिष्यों के सन्तुख आदर्श उपस्थित कर सकता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत को भारत और विश्व में जीवित रखने में सहायता की है। हमारे सबसे महान शिक्षक वह रहे हैं जिन्होंने हमारी संस्कति को जीवित रखा है।

शिक्षकों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य विद्यार्थियों में नैतिक उच्चता उत्पन्न करना है। डा० राधाकृष्णन केवल ज्ञान प्रदान करने से सन्तुष्ट नहीं हैं। आत्मा का विकास और मुक्ति की प्राप्ति ही जीवन का ध्येय है। शिक्षा के लक्ष्य और शिक्षक के कर्तव्य में अधिक अन्तर नहीं हो सकता है। एक वास्तविक शिक्षक को जिज्ञासु भी होना चाहिए। ज्ञान की प्रगति उतनी ही आवश्यक है जितना उसका विस्तार। महान शिक्षक ही अपने आदर्शों, चरित्र, कुशल शिक्षण विधियों के माध्यम से ऐसे बालकों का निर्माण कर सकते हैं जो भारत में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भारतीयता का और उसकी संस्कृति का गरिमापूर्ण गुणगान कर सकते हैं।

डा० राधाकृष्णन के अनुसार स्त्री शिक्षा-

स्त्री शिक्षा के महत्व पर बल देते हुए डा० राधाकृष्णन ने लिखा है कि शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित व्यक्ति नहीं हो सकते हैं। यदि सामान्य शिक्षा को पुरूषों या स्त्रियों तक सीमित रखा जाता है तो स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जायं जिससे वे सुमाता और सुगृहणी बनें। स्त्री विश्वविद्यालयों की स्थापना की जायं जिससे उन्हें ऐसी शिक्षा प्रदान की जायं जिससे वे समाज में अपना योगदान दे सकें। स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करने से शिक्षा निश्चित रूप से अन्य पीढ़ी को हस्तान्तरित हो जायेगी। अतः स्त्रियों की शिक्षा अति आवश्यक है।

डा० राधाकृष्णन के अनुसार नैतिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-

डा० राधाकृष्णन ने स्वच्छ एवं चरित्रवान व्यक्तियों का निर्माण करने के लिए नैतिक शिक्षा की अनिवार्यता बतायी। डा० राधाकृष्णन प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक नैतिक शिक्षा को एक अनिवार्य विषय के रूप में मानते थे। नैतिक शिक्षा से व्यक्ति दृढ़ प्रतिज्ञ, चरित्रवान, अनुशासनप्रिय एवं गुणवान होता है। वे एक ऐसे आदर्श समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें सामाजिक समरसता एवं समानता की भावना विद्यमान हो। वे प्राचीन ऋषियों, गुरूकुलों की शिक्षा पद्धति को लागू कराकर प्राचीन भारतीय संस्कृति का संरक्षण एवं संबर्द्धन बालकों के माध्यम से चाहते थे।

भारत एक कृषि प्रधान विकासशील देश है जहाँ पर बेरोजगारी सुरसा की तरह मुँह बाये खड़ी है। छात्र उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी रोजगार प्राप्त नहीं कर पा रहा है। डिग्रियाँ मात्र कागजों में सीमित होकर रह गयी हैं न उनका कोई सामाजिक महत्व है और न राष्ट्रीय स्तर पर। क्योंकि मात्र डिग्रियाँ लेने से व्यक्ति राष्ट्र निर्माण में अपन सहयोग नहीं दे सकता है। अतः डा० राधाकृष्णन ने व्यावसायिक शिक्षा को महत्वपूर्ण बताया और व्यावसायिक पाठ्यक्रम चलाने का सुझाव दिया। डा० राधाकृष्णन ने व्यावसायिक शिक्षा के लिए निम्नलिखित विषयों का चुनाव किया। कृषि, वाणिज्य शिक्षण, इन्जीनियरिंग एवं टैक्नोलॉजी, कानून, चिकित्सा एवं औद्योगिक शिक्षा आदि।

सन्दर्भग्रन्थ सूची-

1- डा० एल०के०ओड़ शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि।
2- राजेन्द्र पाल सिंह डा० राधाकृष्णन-शिक्षाशास्त्री के रूप में।
3- डा० राधाकृष्णन भारतीय दर्शन।
4- डा० रामसकल पाण्डेय विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा दार्शनिक।
5- डा० सरयू प्रसाद चौबे भारतीय शिक्षा दार्शनिक।